अन्यथा तब तक...

मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह नहीं कि वह सपने देखता है, बल्कि यह है कि वह सपनों को पूरा करने के लिए एक शानदार बहाना भी खोज लेता है। हमारे यहाँ काम करने से पहले परिस्थितियों का अध्ययन होता है, परिस्थितियों के बाद संभावनाओं का विश्लेषण और संभावनाओं के बाद एक ऐसा वाक्य प्रकट होता है, जो सारे परिश्रम पर पानी फेर देता है– 'अन्यथा तब तक... '

यह वाक्य नहीं, भारतीय जीवन-दर्शन का वह सुविधाजनक दरवाजा है, जिससे जिम्मेदारी बाहर निकल जाती है और बहाना भीतर प्रवेश कर जाता है।

किसी अधिकारी से पूछिए कि सड़क कब बनेगी? उत्तर मिलेगा– प्रस्ताव भेज दिया गया है, स्वीकृति की प्रतीक्षा है। स्वीकृति कब मिलेगी? इस पर एक गंभीर मौन के बाद कहा जाएगा– 'अन्यथा तब तक वैकल्पिक व्यवस्था की जाएगी।' वैकल्पिक व्यवस्था क्या है? सड़क के गड्ढों के आसपास से निकलने की नागरिकों की अद्भुत क्षमता! सरकार ने सड़क नहीं बनाई, मगर जनता को बाधा दौड़ का निःशुल्क प्रशिक्षण अवश्य दे दिया।

हमारे यहाँ भविष्य हमेशा उज्ज्वल होता है, केवल वर्तमान को अँधेरे में रहने की आदत पड़ गई है। हर समस्या का समाधान भविष्य के खाते में जमा कर दिया जाता है। पानी आज नहीं है, अगले महीने आएगा। बिजली आज नहीं है, कुछ देर में आएगी। रोजगार आज नहीं है, योजनाएँ आ रही हैं। महँगाई आज है, नियंत्रण के प्रयास जारी हैं। और जनता आज परेशान है, उसे आश्वासन दिया जा रहा है कि कल स्थिति सुधर जाएगी। जब कल आता है, तो वह अपने साथ एक नया कल लेकर आ जाता है।

इस तरह हमारा वर्तमान भविष्य की प्रतीक्षा में बूढ़ा हो जाता है और भविष्य आश्वासनों की गोद में जवान बना रहता है।

'अन्यथा तब तक' दरअसल काम न करने की वह सभ्य भाषा है, जिसमें असमर्थता भी उपलब्धि जैसी दिखाई देती है। जो व्यक्ति सीधे कह दे कि मुझसे नहीं होगा, उसे अयोग्य समझा जा सकता है; लेकिन जो कहता है कि प्रक्रिया प्रचलित है, परीक्षणाधीन है, विचाराधीन है, अनुमोदनाधीन है, वह अनुभवी अधिकारी माना जाता है। काम हो या न हो, शब्दावली ऐसी होनी चाहिए कि सुनने वाले को लगे–देश की प्रगति किसी अदृश्य प्रयोगशाला में तीव्र गति से चल रही है।

हमारे कार्यालयों में फाइलें चलती हैं, मगर कई बार उनकी गति देखकर कछुआ भी स्वयं को तेज धावक समझने लगता है। एक मेज से दूसरी मेज तक फाइल का पहुँचना प्रशासनिक उपलब्धि है। उस पर हस्ताक्षर होना ऐतिहासिक घटना है और काम पूरा हो जाना तो लगभग चमत्कार! यदि कोई पूछ बैठे कि इतने दिन से फाइल कहाँ थी, तो उत्तर मिलता है– 'कुछ तकनीकी कारण थे।' तकनीकी कारण क्या थे? यह तकनीक भी एक रहस्य है। विज्ञान ने चंद्रमा तक पहुँचने की विधि खोज ली, लेकिन हमारे कार्यालयों में फाइल की गति बढ़ाने का सूत्र अभी शोधाधीन है।

और मजे की बात देखिए, जब कोई नागरिक नियमों के अनुसार काम कराने पहुँचता है, तो उसे नियमों की पूरी पुस्तक पढ़ा दी जाती है। लेकिन जब काम रोकना होता है, तब एक छोटा-सा वाक्य पर्याप्त है– 'अभी संभव नहीं है, अन्यथा तब तक प्रतीक्षा करें।' नागरिक पूछता है, 'कब तक?' उत्तर देने वाला घड़ी देखता है, कैलेंडर देखता है, फिर नागरिक का चेहरा देखकर कहता है– 'जल्द ही। '

यह 'जल्द ही' भी बड़ा अद्भुत शब्द है। इसमें कोई निश्चित तारीख नहीं होती, इसलिए यह कभी झूठा सिद्ध नहीं होता। जिस प्रकार कुछ लोग अपनी असफलता को भाग्य के माथे मढ़ देते हैं, उसी प्रकार व्यवस्था अपनी देरी को प्रक्रिया के माथे मढ़ देती है।

घर-परिवार में भी यह दर्शन कम लोकप्रिय नहीं है। पिता कहते हैं, 'कल से नियमित पढ़ाई करना।' बेटा कहता है, 'जी, कल से पक्का।' पति कहता है, 'इस महीने खर्च कम करेंगे।' पत्नी कहती है, 'पहले पिछले महीने का हिसाब तो दीजिए।' पति तत्काल विषय बदलकर पूछता है, 'चाय बनी क्या?' घरेलू अर्थव्यवस्था का सबसे सफल प्रबंधन यही है कि प्रश्न कठिन हो तो उत्तर देने के बजाय दूसरा प्रश्न पैदा कर दो।

विद्यार्थी भी इस कला में पीछे नहीं हैं। परीक्षा सिर पर है, पुस्तक खुली है, मोबाइल हाथ में है और मन में संकल्प है कि आज से गंभीर अध्ययन होगा। तभी मित्र का संदेश आता है– 'बस पाँच मिनट बात करनी है।' वे पाँच मिनट कब पाँच घंटे बन जाते हैं, इसका ज्ञान तब होता है जब सुबह का अखबार दरवाजे पर आ जाता है। विद्यार्थी स्वयं को समझाता है– 'अगले दिन से पूरी तैयारी करूँगा।' परीक्षा के बाद पूछिए कि परिणाम कैसा रहा, तो उत्तर मिलता है– 'प्रश्नपत्र पाठ्यक्रम से बाहर था।' तैयारी भीतर थी या बाहर, इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती।

राजनीति में तो यह वाक्य अपनी पूरी गरिमा के साथ विराजमान है। चुनाव के समय समस्याओं का समाधान तत्काल होता दिखाई देता है। सड़कें बनेंगी, अस्पताल सुधरेंगे, विद्यालयों में शिक्षक आएँगे, युवाओं को रोजगार मिलेगा और किसानों की आय बढ़ेगी। हर घोषणा में भविष्य सुनहरा है। चुनाव बीतते ही वही भविष्य कुछ समय माँगने लगता है। जनता पूछती है– 'वादा कब पूरा होगा?' जवाब आता है– 'सरकार प्रतिबद्ध है, कार्यवाही जारी है। '

प्रतिबद्धता यदि काम करने की इच्छा है, तो उसका प्रमाण काम होना चाहिए; केवल प्रतिबद्धता की घोषणा करना वैसा ही है जैसे कोई भूखे व्यक्ति को भोजन देने के बजाय भोजन के प्रति अपनी संवेदनशीलता पर भाषण दे।

यहाँ समस्या केवल नेताओं की नहीं है। समाज भी अपने हिस्से की जिम्मेदारी से बचने में कम कुशल नहीं। सड़क पर कचरा फेंकने वाला नागरिक नगर निगम को कोसता है। यातायात नियम तोड़ने वाला प्रशासन से अनुशासन की अपेक्षा करता है। विद्यालय में बच्चों को ईमानदारी पढ़ाने वाला व्यक्ति अपने छोटे-से निजी लाभ के लिए नियम तोड़ने में संकोच नहीं करता। हर आदमी चाहता है कि व्यवस्था सुधरे, मगर सुधार की शुरुआत उसके पड़ोसी से हो।

हमारी सामूहिक मानसिकता का विचित्र गणित है–अधिकार मेरे, कर्तव्य तुम्हारे; गलती मेरी मजबूरी, गलती तुम्हारी अपराध; सुविधा मेरी आवश्यकता, सुविधा तुम्हारी पक्षपात।

जब तक यह गणित नहीं बदलेगा, तब तक हर सुधार एक विज्ञापन बनकर रह जाएगा। हम परिवर्तन चाहते हैं, लेकिन परिवर्तन की कीमत नहीं चुकाना चाहते। हमें स्वच्छ शहर चाहिए, मगर कूड़ेदान तक जाने में आलस्य होता है। हमें ईमानदार व्यवस्था चाहिए, मगर अपना काम जल्दी कराने के लिए नियमों से बचने का रास्ता तलाशते हैं। हमें वैज्ञानिक सोच चाहिए, मगर बिना प्रमाण के अफवाह पर विश्वास कर लेते हैं। हम आधुनिकता की सुविधाएँ चाहते हैं, पर अपनी पुरानी जड़ताओं को विरासत बताकर बचाए रखते हैं।

विडंबना यह है कि हम टालमटोल को कभी-कभी धैर्य, कभी विवेक और कभी व्यावहारिक बुद्धिमत्ता का नाम दे देते हैं। जबकि धैर्य और निष्क्रियता में अंतर है। धैर्य वह है जिसमें लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए सही समय की प्रतीक्षा की जाती है; निष्क्रियता वह है जिसमें प्रतीक्षा को ही लक्ष्य बना लिया जाता है।

बीज बोने वाला किसान मौसम की प्रतीक्षा करता है, लेकिन खेत तैयार करना नहीं छोड़ता। वैज्ञानिक परिणाम की प्रतीक्षा करता है, लेकिन प्रयोग करना नहीं छोड़ता। विद्यार्थी सफलता की प्रतीक्षा करता है, लेकिन अध्ययन करना नहीं छोड़ सकता। इसके विपरीत, बहानेबाज व्यक्ति काम आरंभ करने से पहले ही असफलता के लिए सुरक्षित रास्ता बना लेता है। उसकी योजना में काम की तुलना में स्पष्टीकरण अधिक होते हैं और उपलब्धियों की तुलना में परिस्थितियों का विवरण लंबा।

प्रश्न यह नहीं है कि परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं या नहीं। परिस्थितियाँ तो हमेशा कुछ न कुछ प्रतिकूल रहेंगी। प्रश्न यह है कि हम उनके सामने कितनी देर तक खड़े रहेंगे और कितनी देर तक उनके पीछे छिपे रहेंगे।

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। वह न अधिकारी की फाइल देखकर रुकता है, न नेता की घोषणा सुनकर और न विद्यार्थी के संकल्प की प्रतीक्षा में ठहरता है। बीता हुआ समय वापस नहीं आता। जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि हम भविष्य को सुधारने के लिए वर्तमान को टालते रहते हैं और अंततः पाते हैं कि जिस भविष्य के लिए इतना इंतजार किया था, वह भी वर्तमान बनकर हमारे सामने खड़ा है–अधूरी इच्छाओं और नए बहानों के साथ।

इसलिए 'अन्यथा तब तक' कहने से पहले स्वयं से पूछना चाहिए कि वास्तव में तब तक हम करेंगे क्या? क्या कोई ठोस अंतरिम व्यवस्था है? क्या समय-सीमा तय है? क्या जिम्मेदारी निर्धारित है? क्या प्रगति की जाँच होगी? यदि इन प्रश्नों का उत्तर नहीं है, तो यह वाक्य समाधान नहीं, समस्या को सुंदर शब्दों में लपेटकर रख देने की कला है।

आखिरकार, किसी व्यवस्था की विश्वसनीयता उसके आश्वासनों की ऊँचाई से नहीं, उसके काम की जमीन से मापी जाती है। समाज भाषणों से प्रेरित हो सकता है, मगर आगे केवल कर्म से बढ़ता है। योजनाएँ आवश्यक हैं, प्रतीक्षा भी कभी-कभी आवश्यक है, लेकिन अनिश्चितकालीन प्रतीक्षा को नीति बना देना भविष्य के साथ छल है।

हमें ऐसे समाज की जरूरत है जहाँ काम के लिए केवल घोषणा न हो, समय-सीमा भी हो; जहाँ गलती पर स्पष्टीकरण ही नहीं, जवाबदेही भी हो; जहाँ समस्या को अगले दिन तक टालने से पहले यह तय किया जाए कि अगले दिन उसे हल करने के लिए क्या किया जाएगा।

क्योंकि 'तब तक' तभी सार्थक है, जब उसके भीतर कोई काम हो रहा हो। अन्यथा वह समय का एक खाली डिब्बा है, जिसमें हम उम्मीदें भरते हैं और अंत में निराशा निकालते हैं।

और यदि हर सवाल के जवाब में हम यही कहते रहे– 'अन्यथा तब तक... ', तो एक दिन इतिहास भी हमसे पूछेगा कि जब दुनिया आगे बढ़ रही थी, तब तुम क्या कर रहे थे?

हम शायद तब भी अपनी सबसे पुरानी, सबसे सुरक्षित और सबसे लोकप्रिय दलील पेश करेंगे–

'हम आगे बढ़ने की तैयारी कर रहे थे... '

इतिहास मुस्कराकर पूछेगा– 'कब तक? '

और हम कहेंगे– 'बस, थोड़ा-सा और समय दीजिए! '

यही तो हमारी त्रासदी है–हमारे पास हर काम के लिए कोई न कोई बहाना है, लेकिन बहानों को समाप्त करने की कोई समय-सीमा नहीं।



– डॉ रामानुज पाठक
सतना मप्र



प्रबोधन पर्व का समापन समारोह आयोजित

बिहार राज्य एवं गया जिला आचार्य कुल के तत्वावधान में प्रबोधन पर्व का समापन समारोह गया जी जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन भवन में आयोजित किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ सच्चिदानंद प्रेमी और संचालन कमला प्रसाद सिंह ने किया।

प्रबोधन पर्व के तहत आचार्य विनोबा भावे, महात्मा गांधी और लोकनायक जयप्रकाश नारायण की जयंती मनाई जाती है। आज जयप्रकाश नारायण की जयंती पर भारतीय लोकतंत्र में युवाओं की भूमिका विषय पर संगोष्ठी आयोजित की गई। सबसे पहले उपस्थित अतिथियों ने जयप्रकाश नारायण के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित की। सबसे पहले पूर्व जिला शिक्षा पदाधिकारी अनिल कुमार ने अपने विचार रखे। उन्होंने कहा- आज के युवाओं की सोच बुजुर्गों से बहुत आगे की है। लोकतंत्र में युवाओं को आगे आने की जरूरत है। पूर्व प्रधानाध्यापक राजेश कुमार सिन्हा ने कहा- युवाओं को पहले संस्कारी बनाने की जरूरत है। सम्मेलन के उप सभापति अरुण हालीवाल मानते हैं कि अर्थतंत्र के इस युग में युवा अर्थ के पीछे दौड़ लगा रहा है। उसे लोकतंत्र में भी अर्थ दिखाई पड़ता है। अनुग्रह मेमोरियल के आचार्य उमाशंकर सिंह ने कहा- आज हमारी चाह इतनी हो गई है कि हम थोड़े समय में बहुत कुछ पाने की चाहत रखते हैं। युवा भी यही सोचते हैं। केंद्रीय विद्यालय के पूर्व शिक्षक मालवीय जी ने युवाओं के लिए उम्र की कोई सीमा निर्धारित नहीं की। वे मानते हैं कि पहाड़ तोड़ने वाले पर्वत पुरुष दशरथ मांझी आजीवन युवा थे। मुद्रिका सिंह ने जयप्रकाश नारायण को अपनी काव्यांजलि दी। पुतुल कुमारी ने कहा कि सर्वगुण सम्पन्न लोग शिक्षा का दान दें तभी युवा लोकतंत्र को सही राह दिखला सकते हैं। प्रधानाध्यापक अरविंद कुमार ने जयप्रकाश नारायण को अंतर्राष्ट्रीय स्तर का नेता बतलाया। जिलाध्यक्ष उदय सिंह ने नई पीढ़ी के नौजवानों को आचार्यकुल से जुड़ने की बात कही। रामाश्रय सिंह ने प्रबोधन पर्व के समापन पर कहा कि एक महीने का प्रबोधन पर्व युवाओं के लिए पथ प्रदर्शक की तरह है। उन्होंने सुझाव दिया कि प्रबोधन पर्व गांवों में मनाई जाए। सम्मेलन के महामंत्री सुमंत ने आचार्य कुल के सदस्यों को सम्मेलन में प्रबोधन पर्व आयोजित करने के लिए सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ प्रेमी ने याद दिलाई कि आचार्य विनोबा भावे आचार्य कुल को राजनीति से दूर रहने की सलाह दी थी। उनका मानना था कि आचार्यों को राजनेताओं को सही राह दिखाने की जरूरत है। इस अवसर पर गया जिले के अलग-अलग क्षेत्रों से सही संख्या में आचार्य कुल के सम्मानित सदस्य उपस्थित हुए।

ऐनी कार्सन : जब प्राचीन मिथक आधुनिक मनुष्य की आत्मकथा बन जाते हैं!

कुछ लेखक साहित्य की बनी बनाई पगडंडियों पर चलते हैं, और कुछ ऐसे पूरी जमीन का मानचित्र ही बदल देते हैं। कनाडा की धरती पर जन्मी, क्लासिकी विदुषी, कवयित्री, निबंधकार और अनुवादक ऐनी कार्सन (Anne Carson) इसी दूसरी श्रेणी की एक विलक्षण हस्ताक्षर हैं।

वर्ष 2026 के साहित्य के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित कार्सन की यह उपलब्धि केवल एक प्रतिष्ठित सम्मान का मिलना भर नहीं है, बल्कि यह इस बात की आधिकारिक स्वीकारोक्ति है कि साहित्य की स्थापित विधागत दीवारें अब पुरानी पड़ चुकी हैं। स्वीडिश अकादमी ने उनके साहसिक और नवोन्मेषी अवदान को रेखांकित करते हुए सही ही कहा है कि शास्त्रीय परंपरा के साथ उनका सृजनात्मक संवाद समकालीन वैश्विक साहित्य के लिए नितांत नए रूपों का सृजन करता है।

1. विधाओं की सीमाएं और 'हाइब्रिड' चेतना का अतिक्रमण:- कार्सन की लेखनी कविता और गद्य के बीच किसी भी पारंपरिक या अभेद दीवार को स्वीकार नहीं करती। उनके यहाँ निबंध अपनी तार्किकता के साथ काव्यात्मक ऊँचाइयों को छूता है, और कविता एक गहरे दार्शनिक अनुसंधान में बदल जाती है।

उनकी बहुचर्चित कृति Autobiography of Red (1998) इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। प्राचीन यूनानी कवि स्टेसिकोरस की गेरयोन-संबंधी मिथकीय कथा से प्रेरित यह कृति एक आधुनिक 'उपन्यास-कविता' है, जहाँ मिथक, समकालीन प्रेम, पहचान का संकट, एकाकीपन और आत्मबोध नए और तीखे अर्थ ग्रहण करते हैं। वे गद्य और पद्य के बीच की सीमा को मिटाकर एक ऐसा संकर (Hybrid) रूप रचती हैं, जो आधुनिक पाठक की बेचैनी को सबसे सटीक आवाज़ देता है।

2. यूनानी मिथक : इतिहास नहीं, वर्तमान का जीवंत दर्पण – कार्सन के लिए प्राचीन ग्रीक और लैटिन साहित्य अतीत के धूलधूसरित अध्याय नहीं हैं, बल्कि वर्तमान मनुष्य के अंतर्मन को पढ़ने के सबसे पैने औजार हैं।

सैफो (Sappho), सोफोक्लीज और यूरिपिडीज जैसी प्राचीन साहित्यिक परंपराओं से उनका गहरा वैचारिक संवाद उनकी रचनात्मक दृष्टि की रीढ़ है। उनकी कृति If Not, WinterN Fragments of Sappho में सैफो की खंडित और अधूरी कविताओं का अनुवाद यह साबित करता है कि किसी प्राचीन पाठ की 'अपूर्णता' भी अपनी जगह एक स्वतंत्र और अद्भुत काव्यात्मक शक्ति रख सकती है। कार्सन अतीत को सिर्फ दोहराती नहीं हैं; वह उसके मौन, उसकी रिक्तियों और अनकहे सत्यों को आज के मनुष्य की पीड़ा से इस तरह पिरो देती हैं कि मिथक हमारी अपनी आत्मकथा लगने लगते हैं।

3. प्रेम : मिलन का उल्लास नहीं, अनुपस्थिति और अभाव का दर्शन- समकालीन साहित्य में प्रेम को अक्सर सुखद मिलन या सामान्य आकर्षण तक सीमित कर दिया जाता है, किंतु कार्सन की दृष्टि इससे कहीं अधिक गहरी और जटिल है।

Eros the Bittersweet (1986) में वे प्रेम और मानवीय इच्छा की विरोधाभासी प्रकृति का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करती हैं। उनके यहाँ प्रेम केवल संगी का साथ नहीं, बल्कि दूरी, अभाव, अंतहीन आकांक्षा और अनिश्चितता का गहरा अहसास है।



उनकी कृति The Beauty of the Husband (2001) प्रेम, वैवाहिक जीवन के अंतर्द्वंद्वों और विश्वास के विघटन को बौद्धिक और काव्यात्मक भव्यता के साथ प्रस्तुत करती है। इस कृति के लिए उन्हें टी. एस. एलियट पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे इस प्रतिष्ठित सम्मान को प्राप्त करने वाली इतिहास की पहली महिला बनीं।

4. शोक, स्मृति और भाषा की अंतहीन सीमाएं:-Nox (2010) ऐनी कार्सन की सबसे अनूठी और मर्मस्पर्शी कृतियों में गिनी जाती है। अपने भाई के आकस्मिक निधन और उससे जुड़ी स्मृतियों को समर्पित यह रचना किसी पारंपरिक पुस्तक के ढाँचे में नहीं बंधती। यह एक 'विजुअल बुक' जैसी है, जहाँ कविता, क्लासिकी अनुवाद, पारिवारिक तस्वीरें, पत्र और टूटे हुए संस्मरण मिलकर शोक को व्यक्त करने का एक अभूतपूर्व माध्यम बनाते हैं।कार्सन मानती हैं कि सबसे गहरे दुख भाषा की पकड़ से बाहर होते हैं। उनकी महानता इसी में है कि वे उन अनकहे और अदृश्य कोनों को छू लेती हैं, जहाँ तक शब्द आमतौर पर पहुँच नहीं पाते।

5.भविष्य के साहित्य के लिए एक नई दिशा-2020 के प्रिंसिपेस ऑफ़ ऑस्टुरियस पुरस्कार से लेकर तमाम वैश्विक सम्मानों तक, ऐनी कार्सन का सफर यह बताता है कि साहित्य की नवीनता नए विषयों को चुनने भर से नहीं आती, बल्कि अनुभवों को दर्ज करने के लिए नए 'माध्यमों' और 'आकारों' की खोज से पैदा होती है।

उनकी रचनाएँ पाठक से केवल एक निष्क्रिय मनोरंजन की मांग नहीं करतीं, बल्कि गहरी बौद्धिक सक्रियता और सहभागिता की अपेक्षा रखती हैं। वे हर स्थापित निष्कर्ष को खुला छोड़ देती हैं, ताकि पाठक भी उस विचार-यात्रा का हिस्सा बन सके।

'साहित्य केवल वह नहीं जो हम मुद्रित पृष्ठों पर पढ़ते हैं; साहित्य वह भी है, जिसके माध्यम से हम भाषा, स्मृति, प्रेम और मनुष्य होने की शर्त को नए सिरे से परिभाषित करते हैं। '

6. वर्तमान युग में उनके लेखन की प्रासंगिकता- 21वीं सदी के इस दौर में, जहाँ सूचनाओं की अधिकता है लेकिन आंतरिक संवाद और एकाग्रता लगातार कम हो रही है, ऐनी कार्सन का साहित्य अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

सतहीपन के विरुद्ध बौद्धिक गहराई:- आज जब सोशल मीडिया और एल्गोरिदम सब कुछ त्वरित, संक्षिप्त और आसान बनाना चाहते हैं, कार्सन का साहित्य पाठक से बौद्धिक सक्रियता, धैर्य और सहभागिता की मांग करता है। वे उत्तर नहीं देतीं, बल्कि पाठक को खुद सवालों के दलदल में उतरने के लिए छोड़ देती हैं।

ऐतिहासिक और मिथकीय निरंतरता: -वर्तमान समय में जब मनुष्य अपनी जड़ों से कटता जा रहा है, कार्सन यह सिखाती हैं कि प्राचीन मिथक और इतिहास अतीत के मृत अवशेष नहीं हैं। वे आज के संकटों, अकेलेपन और पहचान के संघर्षों को समझने के सबसे बड़े जीवंत दस्तावेज हैं।

भाषा की सीमाओं का अहसास: जिस युग में भाषा का इस्तेमाल केवल विज्ञापनों और सतही संवादों के लिए हो रहा है, कार्सन हमें यह याद दिलाती हैं कि भाषा सिर्फ सूचना का माध्यम नहीं है, बल्कि यह उन अनकहे, अदृश्य और जटिल मानवीय कोनों को छूने का जरिया है जहाँ हमारी मूल मानवीयता बसती है।

संक्षेप में, ऐनी कार्सन का दर्शन हमें यह सिखाता है कि साहित्य केवल एक कला-रूप नहीं है, बल्कि यह खुद को और अपने समय को नए सिरे से परिभाषित करने की एक अंतहीन और साहसी यात्रा है।ऐनी कार्सन का साहित्य हमें यह विश्वास दिलाता है कि प्राचीन मिथक और इतिहास तभी जीवंत रह सकते हैं, जब हर नया युग उन्हें अपने वर्तमान के सवालों, अपनी टूटन और अपनी उम्मीदों के आलोक में दोबारा खंगाले। यह परंपरा की रूढ़िवादी पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि परंपरा के साथ एक अत्यंत जीवंत, बौद्धिक और सृजनशील संवाद है।



डॉ कवींद्र भारद्वाज
विभागाध्यक्ष हिंदी शासकीय महाविद्यालय
हाटपीपल्या
जिला देवास मध्य प्रदेश
7879435344



केवल सफलता ही है, आपकी-अपनी मंजिल!

कुछ युवा थोड़ी -सी असफलता से मायूस और निराश हो जाते हैं.जी नहीं,व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में,किसी भी समस्या में,तनिक भी निराश या मन को कमजोर करने की जरूरत नहीं है.आप पक्का मानें.आप किसी टेस्ट या कोई प्रतियोगी परीक्षा में सफल नहीं होते तो उसका यह मतलब नहीं कि आप फेल हो गए.सफल नहीं हुए. हो सकता है आपने जो परीक्षा या टेस्ट दिया है.भगवान ने उससे अलग और बेहतर सोच रखा हो.

मेरे प्यारे भाई -बहिनों ,आपतो केवल यह मान लीजिए कि ईश्वर या भगवान ने,आपके लिए,उस नौकरी या पद से बेहतर पोस्ट चुन कर रखी हो.आप अच्छे से अच्छी नौकरी के पात्र हैं.अपने आपको कभी भी कम भी नहीं मानना चाहिए.

मैं यह मानता हूं कि दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति लिए



ईश्वर ने कुछ न कुछ बेहतर काम सोच रखा है.बस,यह समझिए जैसे ही सही माकूल वक्त आता है,वैसे ही आपके सारे काम बन जाएंगे.आप तो बस अपनी तैयारी पूरी मेहनत और निष्ठा से करते जाइए.आपद्ध सफल जल्दी होंगे और शानदार तरीके से होंगे.

आपको आपकी मेहनत का फल जरूर मिलता है.आप किंचित परेशान न हों.जिस प्रकार का पद चाहिए,बस,उसके हिसाब से तैयारी जरूर करिएगा.समय पर जब भी नौकरी का या किसी पद का विज्ञापन निकले,समय पर आवेदन करें.कम्पटीशन में बैठें.

पूरा धैर्य और आत्मविश्वास आपको आपके मन की नौकरी जरूर दिलाएगा.कभी निराश या कमजोर न पड़ें.

ऋषि मोहन श्रीवास्तव
लेखक,विचारक,समीक्षक.

शक्ति, साहस और शांति की देवी : माँ चंद्रघंटा

नवरात्रि के तृतीय दिवस, माँ चंद्रघंटा की वंदना,
सिंहवाहिनी, दशभुजधारिणी, करती जग की रक्षा।
मस्तक पर घंटे-सा अर्धचंद्र, स्वर्णिम आभा न्यारी,
दुष्टों का संहार करने वाली, माँ जग की हितकारी॥

हाथों में त्रिशूल, गदा, धनुष-बाण सुशोभित होते हैं,
कमल, कमंडल, जपमाला से दिव्य भाव प्रकट होते हैं।
शस्त्र धारण कर भी माता, शांति का संदेश सुनातीं,
भक्तों के संकट हरने को माता, हरदम आगे आतीं॥



घंटे की पावन ध्वनि से, भय और बाधाएँ हरतीं,
दुष्ट शक्तियों का नाश कर, भक्तों की रक्षा करतीं।
साहस, निडरता, आत्मबल का, माँ आशीष लुटातीं,
मन में शांति, हृदय में श्रद्धा, भक्ति-ज्योति जगातीं॥

धूप-दीप और पुष्प चढ़ाकर, माँ का ध्यान लगाएँ,
दूध, खीर और मिष्ठान्न का, श्रद्धा से भोग लगाएँ।
दुर्गा चालीसा का पाठ करें, आरती दीप जलाएँ,
'ओम देवी चंद्रघंटायै नमः' जपकर माँ को मनाएँ॥

हे माँ! जीवन के पथ पर, साहस का संचार करो,
मन के सारे भय हरकर, सुख-शांति का विस्तार करो।
तेरी कृपा बनी रहे माँ, हर जीवन के संकट से पार रहें,
तेरे चरणों में शीश झुकाकर, हम भक्त सदा निहाल रहें॥

जय माता दी!
जय माँ चंद्रघंटा!

– रूपेश कुमार
चैनपुर, सीवान, बिहार

